

जीवन्मुक्तगीता

[वेदान्तसारसे ओत-प्रोत अत्यन्त लघुकलेवरवाली जीवन्मुक्तगीता श्रीदत्तात्रेयजीकी रचना है, जिसमें अत्यन्त संक्षिप्त, पर सारगर्भित ढंगसे सहज-सुबोध दृष्टान्तोंद्वारा जीव तथा ब्रह्मके एकत्वका प्रतिपादन किया गया है, साथ ही जीवन्मुक्त-अवस्थाको भी सम्यक् रूपसे परिभाषित किया गया है। इसी साधकोपयोगी गीताको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

**जीवन्मुक्तिश्च या मुक्तिः सा मुक्तिः पिण्डपातने।
या मुक्तिः पिण्डपातेन सा मुक्तिः शुनि शूकरे ॥ १ ॥**

अपने शरीरकी आसक्तिका त्याग (देहबुद्धिका त्याग) ही वस्तुतः जीवन्मुक्ति है। शरीरके नाश होनेपर शरीरसे जो मुक्ति (मृत्यु) होती है, वह तो कूकर-शूकर आदि समस्त प्राणियोंको भी प्राप्त ही है ॥ १ ॥

**जीवः शिवः सर्वमेव भूतेष्वेवं व्यवस्थितः।
एवमेवाभिपश्यन् हि जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २ ॥**

शिव (परमात्मा) ही सभी प्राणियोंमें जीवरूपसे विराजमान हैं— इस प्रकार देखनेवाला अर्थात् सर्वत्र भगवद्दर्शन करनेवाला मनुष्य ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २ ॥

**एवं ब्रह्म जगत्सर्वमखिलं भासते रविः।
संस्थितं सर्वभूतानां जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ३ ॥**

जिस प्रकार सूर्य समस्त ब्रह्माण्डमण्डलको प्रकाशित करता रहता है, उसी प्रकार चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म समस्त प्राणियोंमें प्रकाशित होकर सर्वत्र व्याप्त है। इस ज्ञानसे परिपूर्ण मनुष्य ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ३ ॥

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।
आत्मज्ञानी तथैवैको जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ४ ॥

जैसे एक ही चन्द्रमा अनेक जलाशयोंमें प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपोंमें दिखायी देता है, उसी प्रकार यह अद्वितीय आत्मा अनेक देहोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे दीखनेपर भी एक ही है—इस आत्मज्ञानको प्राप्त मनुष्य ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ४ ॥

सर्वभूते स्थितं ब्रह्म भेदाभेदो न विद्यते।
एकमेवाभिपश्यँश्च जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ५ ॥

सभी प्राणियों में स्थित ब्रह्म (परमात्मा) भेद और अभेदसे परे है। (एक होनेके कारण भेदसे परे और अनेक रूपोंमें दीखनेके कारण अभेदसे परे है) इस प्रकार अद्वितीय परमतत्त्वको सर्वत्र व्याप्त देखनेवाला मनुष्य ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ५ ॥

तत्त्वं क्षेत्रं व्योमातीतमहं क्षेत्रज्ञ उच्यते।
अहं कर्ता च भोक्ता च जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ६ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पंचतत्त्वोंसे बना यह शरीर ही क्षेत्र है तथा आकाशसे परे अहंकार ('मैं') ही क्षेत्रज्ञ (शरीररूपी क्षेत्रको जाननेवाला) कहा जाता है। यह 'मैं' (अहंकार) ही समस्त कर्मोंका कर्ता और कर्मफलोंका भोक्ता है। (चिदानन्दस्वरूप आत्मा नहीं)—इस ज्ञानको धारण करनेवाला ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ६ ॥

कर्मैन्द्रियपरित्यागी ध्यानावर्जितचेतसः।
आत्मज्ञानी तथैवैको जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ७ ॥

ध्यानसे भरे एकाग्र चित्तवाला और कर्मैन्द्रियोंकी हलचलसे रहित, अद्वितीय आत्मतत्त्वमें लीन ज्ञानी ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ७ ॥

शारीरं केवलं कर्म शोकमोहादिवर्जितम्।
शुभाशुभपरित्यागी जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ८ ॥

जो मनुष्य शोक और मोहसे रहित होकर यथाप्राप्त शरीरधर्मका पालन करता हुआ कर्म करता रहता है और शुभ-अशुभके भेदसे ऊपर उठ गया है, ऐसा ज्ञानी ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ८ ॥

कर्म सर्वत्र आदिष्टं न जानाति च किञ्चन।
कर्म ब्रह्म विजानाति जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ९ ॥

शास्त्रविहित कर्मके अतिरिक्त जो अन्य कुछ नहीं जानता तथा कर्मको ब्रह्मस्वरूप जानता हुआ सम्पादित करता रहता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ९ ॥

चिन्मयं व्यापितं सर्वमाकाशं जगदीश्वरम्।
सहितं सर्वभूतानां जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १० ॥

सभी प्राणियोंके हृदयाकाशमें व्याप्त चिन्मय परमात्मतत्त्वको जो जानता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १० ॥

अनादिवर्ती भूतानां जीवः शिवो न हन्यते।
निर्वैरः सर्वभूतेषु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ ११ ॥

प्राणियोंमें स्थित शिवस्वरूप जीवात्मा अनादि है और इसका नाश नहीं हो सकता—ऐसा जानकर जो सभी प्राणियोंके प्रति वैर-रहित हो जाता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ११ ॥

आत्मा गुरुस्त्वं विश्वं च चिदाकाशो न लिप्यते।
गतागतं द्वयोर्नास्ति जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १२ ॥

आत्मा ही गुरुरूप और विश्वरूप है, इस चैतन्य आकाशको कुछ भी मलिन नहीं कर सकता। भूतकाल और वर्तमान दोनोंही कालके

अंश होनेसे एक ही हैं, दो नहीं, जो ऐसा जानता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १२ ॥

**गर्भध्यानेन पश्यन्ति ज्ञानिनां मन उच्यते।
सोऽहं मनो विलीयन्ते जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १३ ॥**

अन्तःध्यानके द्वारा जिसे ज्ञानीजन देख पाते हैं, वह 'मन' कहा जाता है। उस मनको सोऽहं (वह परमतत्त्व मैं ही हूँ)-की भावनामें जो विलीन कर लेता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १३ ॥

**ऊर्ध्वध्यानेन पश्यन्ति विज्ञानं मन उच्यते।
शून्यं लयं च विलयं जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १४ ॥**

उच्चध्यानमें स्थित होकर जिस चैतन्यका दर्शन योगीजन करते हैं, वह 'मन' कहा जाता है। उस मनको शून्य, लय तथा विलयकी प्रक्रियासे जो युक्त कर लेता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १४ ॥

**अभ्यासे रमते नित्यं मनो ध्यानलयङ्गतम्।
बन्धमोक्षद्वयं नास्ति जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १५ ॥**

मनको ध्यानसे लय करके जो नित्य अभ्यासमें लगा रहता है और जिसे यह ज्ञान हो गया है कि बन्धन और मोक्ष दोनोंकी ही सत्ता वास्तविक नहीं है (मायिक है), वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १५ ॥

**एकाकी रमते नित्यं स्वभावगुणवर्जितम्।
ब्रह्मज्ञानरसास्वादी जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १६ ॥**

स्वभावसिद्ध गुणोंसे रहित होकर (ऊपर उठकर) जो एकान्तमें मग्न रहता है, वह ब्रह्मज्ञानके रसका आनन्द लेनेवाला ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १६ ॥

हृदि ध्यानेन पश्यन्ति प्रकाशं क्रियते मनः।

सोऽहं हंसेति पश्यन्ति जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १७ ॥

जो साधक अपने हृदयमें उस परमतत्त्वका 'सोऽहं—हंसः' रूपसे ध्यानकरते हैं तथा अपने चित्तको उससे प्रकाशित करते हैं, वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं ॥ १७ ॥

शिवशक्तिसमात्मानं पिण्डब्रह्माण्डमेव च।

चिदाकाशं हृदं मोहं जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १८ ॥

अपनी आत्माको शिव-शक्तिरूप परमात्मतत्त्व जानकर और अपने शरीर तथा ब्रह्माण्डको समान जानता हुआ जो हृदयस्थित मोहको चिदाकाशमें विलीन कर देता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १८ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिञ्च तुरीयावस्थितं सदा।

सोऽहं मनो विलीयेत जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १९ ॥

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्थामें रहते हुए भी जिसका मन सदा सोऽहं (मैं वही परमात्मतत्त्व हूँ)—के भावमें मग्न रहता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १९ ॥

सोऽहं स्थितं ज्ञानमिदं सूत्रेषु मणिवत्परम्।

सोऽहं ब्रह्म निराकारं जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २० ॥

मैं वही निराकार ब्रह्म हूँ—इस सोऽहं ज्ञानधारामें जो उसी प्रकार निरन्तर स्थित रहता है, जैसे पिरोयी गयी मणिमालामें सूत्र निरन्तर विद्यमान रहता है, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २० ॥

मन एव मनुष्याणां भेदाभेदस्य कारणम्।

विकल्पनैव संकल्पो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २१ ॥

विकल्प और संकल्पात्मक मन ही मनुष्योंके भेद और ऐक्यका

हेतु है, जो ऐसा जानता है (और मनके पार चला जाता है), वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २१ ॥

**मन एव विदुः प्राज्ञाः सिद्धसिद्धान्त एव च।
सदा दृढं तदा मोक्षो जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २२ ॥**

विद्वानोंने मनको ही जान लिया है। सिद्ध-सिद्धान्त भी यही है कि (साधनामें) मनकी दृढ़तासे ही मोक्ष प्राप्त होता है। जिसने इस सत्यको जान लिया, वही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २२ ॥

**योगाभ्यासी मनःश्रेष्ठो अन्तस्त्यागी बहिर्जडः।
अन्तस्त्यागी बहिस्त्यागी जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ २३ ॥**

मनसे अन्तर्वृत्तियोंका त्याग और बाह्यवृत्तियोंकी उपेक्षा करनेवाला योगाभ्यासी श्रेष्ठ है, किंतु अन्तः और बाह्य—दोनों वृत्तियोंका मनसे त्याग करनेवाला ही वस्तुतः जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता जीवन्मुक्तगीता सम्पूर्णा ॥

